Vol. 18 No. - 3-2015 ISSNo. 975-4520 वर्ष-18-संख्या-3-2015

भारतीय कला एवं धर्म शोध संस्थान वाराणसी द्वारा संचालित

REFERRED JOURNAL

कला सरोवर

KALA SAROVAR

(भारतीय कला एवं संस्कृति की विशिष्ट शोध पत्रिका)

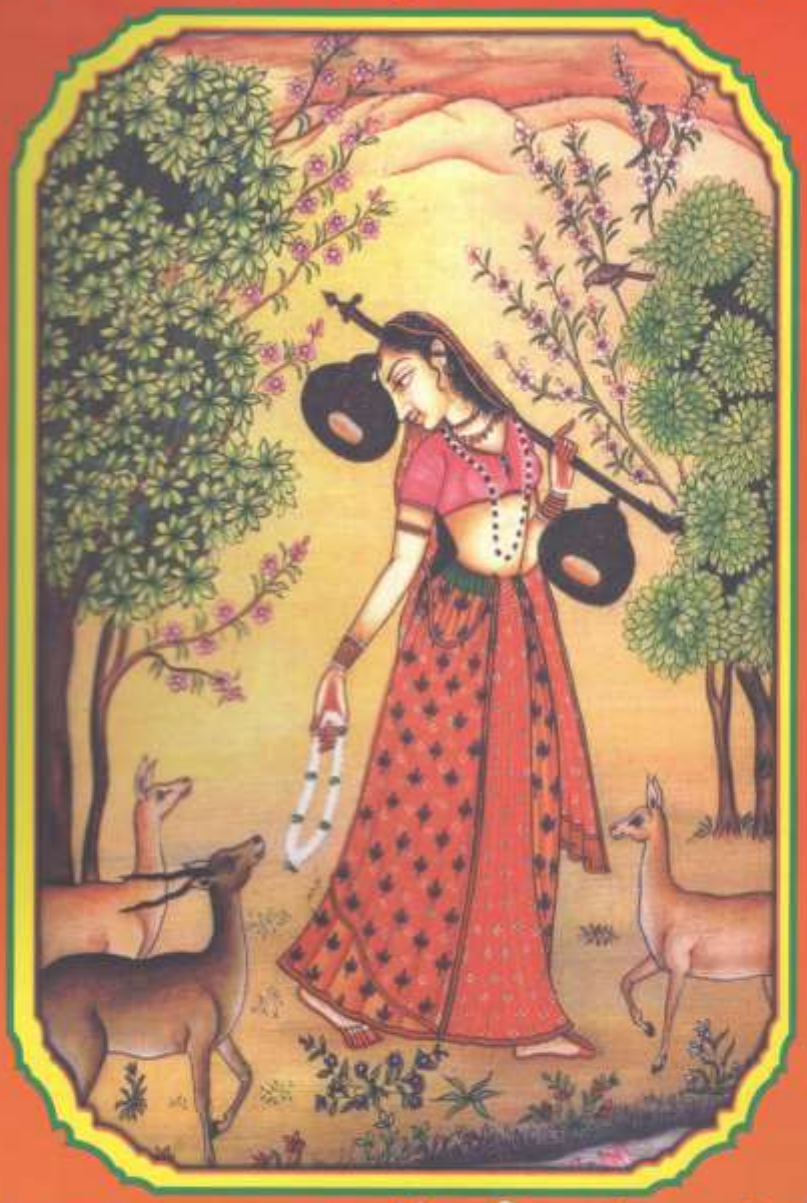

प्रधान सम्पादक डॉ0 प्रेमशंकर द्विवेदी

Vol. 18 No. - 3-2015 ISSNo. 975-4520 वर्ष-18-संख्या-3-2015

Vol.-18-No.-3-2015 ISSNo. 975-4520 वर्ष-18-संख्या-3-2015

कला सरोवर
कला एवं धर्म शोध संस्थान, वाराणसी द्वारा संचालित

कला सरोवर (त्रैमासिक)

भारतीय कला एवं संस्कृति की विशिष्ट शोध पत्रिका

REFERRED JOURNAL

प्रकाशक :
कला एवं धर्म शोध संस्थान
बी. 33/33 ए-1, न्यू साकेत कालोनी,
बी.एच.यू., वाराणसी - 221005
Phone- 0542- 2310682, Mob.- 9451397205

मूल्य : 500.00 रुपये (Vol.-18-No.-3-2015)
वार्षिक सदस्यता शुल्क- 2000.00 रुपये
© प्रधान सम्पादक - कला सरोवर
ISSN : 975-4520

कम्प्यूटर अक्षर संरचना :
कला कम्प्यूटर मिडिया
बी. 33/33 ए - 1, न्यू साकेत कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682
Email Id : kalaprakashanvns@yahoo.in

मुद्रक :
महावीर प्रेस
भेलूपुरा, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

क्रम		पृ. सं.
सम्पादक की कलम से	-------	iii
भारतीय चित्रकला की रूपरेखा *डॉ0 प्रेमशंकर द्विवेदी*	-------	5-9
बौद्ध धर्म का स्थापत्य कला पर प्रभाव *डॉ0 राहुल कृष्ण*	-------	10-11
वर्तमान परिवेश में सरदार पटेल की प्रासांगिकता *डॉ0 राम प्रसाद सिंह*	-------	12-20
वृहत्तर भारतीय संस्कृति में दशावतार *डॉ0 मनीष कुमार द्विवेदी*	-------	21-23
कागज की पोथियों को बनाने की पद्धति *डॉ0 प्रेमशंकर द्विवेदी*	-------	24-27
शिक्षा एवं समाज *डॉ0 अमर बहादुर सिंह* *डॉ0 अमर ज्योति सिंह*	-------	28-29
भारत में प्रिंट मीडिया का आरंभ *डॉ0 राम प्रसाद सिंह*	-------	30-35
राष्ट्रों के भाग्य विधाता व व्यवस्थापक युवा संस्कृति *डॉ0 अमर बहादुर सिंह* *डॉ0 अमर ज्योति सिंह*	-------	36-38
यज्ञाचार्य ऋष्यशृंग और बिहार *डॉ0 मनुजी राय*	-------	39-42
पुराणों में गंगा *डॉ0 विवेकानंद तिवारी*	-------	43-46
साहित्य, समाज और संस्कृति *कुमारी मंजूषा*	-------	47-52
नाट्यशास्त्र में वर्णित रंगमंच : एक अध्ययन *अलका गिरि*	-------	53-60
आधुनिक पत्रकारिता के बदलते प्रतिमान *शम्भू दत्त पाण्डेय*	-------	61-65
सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता मनुष्य का जीवन औश्र त्रिलोचन शास्त्री के काव्य-सिद्धान्त *श्रीमती ललिता कुमारी*	-------	66-69
संस्कृत साहित्य में रामतत्त्व विवेचन *डॉ0 विजय शंकर राय*	-------	70-74
गीत गोविन्द में बसंत *डॉ0 लिली अग्रवाल*	-------	75-78
तुलसी की भक्ति *डॉ0 रामेन्द्र सिंह*	-------	79-81
"Women's Position in Indian Art" *Abha Mishra Pathak*	-------	82-83
Retail Management in India *Sweta Singh*	-------	84-87
पुस्तक-समीक्षा	-------	88-88

नाट्यशास्त्र में वर्णित रंगमंच : एक अध्ययन

★ अलका गिरि

मानव के भावों एवं अनूभूतियों की अभिव्यक्ति को''कला''की संज्ञा दी गई है। ''भारत की सभी कलाएं यहाँ के आध्यात्मिक संस्कृति से प्रभावित रही हैं भारतीय शास्त्रीय संगीत भी हमारे संस्कृति का एक स्वरूप है। भारतीय संगीत एक ऐसी विधा अथवा कला है जो मानव ही नहीं बल्कि प्राकृतिक जीव–जंतुओं को भी अपनी तरफ आकर्षित करती है। कला का प्रधान साधन 'कल्पना' है तथा कलाकार अपनी कल्पना के अनुसार अपने कला का प्रदर्शन करता है। किसी भी कला का एकांत अभ्यास एवं दर्शकों के समक्ष कला की प्रस्तुति दोनों ही नितांत पृथक हैं, प्रत्येक कलाकार अपनी कला के लिए दूसरो का विचार जानना चाहता हैं। लोगों पर अपनी कला की प्रतिक्रिया जान लेने के पश्चात् ही कलाकार को हृदय में स्थायी सुख प्राप्त होता है। अतः इस भावना को प्रकट करने एवं दर्शकों के समक्ष अपनी कला की प्रस्तुति के लिए एक विशेष स्थान कि आवश्यकता हुई, उस विशेष स्थान को ही''मंच'' कहा गया।

मानव की उत्पत्ति के साथ ही संगीत की उत्पत्ति मानी गई है तथा संगीत की उत्पत्ति के साथ ही मंच की उत्पत्ति। प्राचीन काल से ही कहीं ना कहीं किसी न किसी रूप में मंच का प्रयोग होता रहा है। प्राचीन काल में वेदों में –मंत्रों एवं ऋचाओं के गान के लिए विषेश आसन अथवा स्थान को बनाया जाता था, जो मंच की रूपरेखा को दर्शाता है। मंच को बनाने के लिए तथा उसे सुव्यवस्थित करने के लिए मनुष्य अपने विचार एवं नई सोच का सर्वदा प्रयोग करता रहा है।

मंच को संगीत का अनिवार्य अंग माना गया है। कलाकार अपनी कल्पना एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति मंच प्रदर्शन के द्वारा ही प्रदर्शित करता है तथा उसके प्रदर्शन की प्रतिक्रिया श्रोताओं से प्राप्त होता है अतः मंच प्रदर्शन में कलाकार एवं श्रोताओं के साथ मंच का होना अति आवश्यक माना गया है। जहाँ भी कलाकार कला का प्रदर्शन करता है, व श्रोतागण उपस्थित होते हैं, वहीं पर मंच का उदय होता है।

नाट्यशास्त्र में मंच एवं नाट्यमण्डप

अनेक विद्वानों के अनुसार भारत में नाट्य गृह की कल्पना ग्रीक नाट्य से ली गई है। भारतीय संगीत शास्त्र के अध्ययन के लिये जो कुछ सामग्री आज उपलब्ध है, उसके प्रणेताओं में भरतमुनि को ही आदिम स्थान दिया गया है क्योंकि इससे पूर्व संगीतशास्त्र पर रचित कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।

भरतमुनि ने द्वितीय अध्याय में नाट्यमण्डप का विस्तार से विवेचन किया है जिसमें उन्होनें नाट्यमण्डय के विभिन्न प्रकारों,निर्माण विधि एवं उसके विभिन्न अंग यथा नेपथ्यगृह, रंगपीठ, मत्तवारणी, स्तम्भविधान, दारुकर्म आदि के की व्याख्या की है।[1]

★ शोध छात्रा (नृत्य विभाग), संगीत एवं मंचकला संकाय, का.हि.वि.वि., वाराणसी ।

भरत का काल ई0पू0 2 शती से 2 ई0 तक माना गया है। वास्तव में भरत का नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहद् कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन और प्रामाणिक सामाग्री प्रस्तुत करता हैं। रस, छन्द, भाषा, वेशभूषा, रंगमंच, अभिनय, संगीत तथा नृत्य में से ऐसा कोई विषय नहीं, जिसका विवरण इस गन्थ में न हुआ हो। भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र में इसकी व्याख्या की है–

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न सा योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते"।[2]

अर्थात कोई ऐसा ज्ञान नहीं, ऐसा शिल्प नहीं, कोई ऐसी कला नही, कोई ऐसी विधा नही, कोई ऐसा योग नही या कोई ऐसा कर्म नहीं जो नाट्यशास्त्र में न प्राप्त हो।

भरत कृत नाट्य शास्त्र के द्वितीय अध्याय में नाट्यमण्डप की विवेचना की गई हैं।

श्रूयतां तद्यथा यत्र कर्तव्यो नाट्यमण्डपः।
तस्य वास्तु च पूजा य यथायोज्यं प्रयत्नतः।।[3]

अर्थात जहाँ पर व जिस प्रकार से नाट्यमण्डप का निर्माण करना चाहिए और उसके वास्तु अर्थात् नाट्यगृह के भूमि का आकार, परिमाण आदि तथा पूजा प्रयत्न पूर्वक जैसा करना चाहिए उसे सुनिये।

इह प्रेक्षागृहं दृष्ट्वा धीमता विश्वकर्मणा।
त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः।।4

अर्थात यहाँ बुद्धिमान विश्वकर्मा ने प्रेक्षागृह को देखकर शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के सन्निवेश (परिमाण आदि) की परिकल्पना की है।

विकृष्टश्चतुरश्रश्च त्र्यश्रश्चैव तु मण्डपः।
तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम्।।5

विप्रकृष्ट, चतुरश्र तथा त्र्यश्र तीन प्रकार के नाट्यमंडप होते हैं तथा उनके ज्येष्ठ, मध्यम तथा अधम ये तीन प्रमाण हैं।

इसी सन्दर्भ में नाट्यशास्त्र का हिन्दी रूपान्तरण ग्रन्थ "संक्षिप्त नाट्य शास्त्रम्" जो राधा बल्लभ त्रिपाठा द्वारा रचित है उसमें उन्होंने नाट्यशास्त्र के श्लोको का वर्णन करते हुए कहा है कि बुद्धिमान विश्वकर्मा ने शास्त्र की दृष्टि से प्रेक्षागृह की रचना तीन प्रकार की परिकल्पित की हैं। नाट्यमंडप विप्रकृष्ट चतुरश्र तथा त्र्यश्र तीन प्रकार के होते हैं तथा उनके ज्येष्ठ, मध्य तथा अधम ये तीन प्रमाण है।[6]

भरत द्वारा आकार की दृष्टि से तीन प्रकार के नाट्य मण्डप का विधान किया गया है उसमें विप्रकृष्ट नाट्यमण्डप आयताकार, चतुरश्र वर्गाकार और त्र्यश्र त्रिकोण होता है। अणु, रज से हस्त–दण्ड आदि के माध्यम से इन मण्डपों का माप होता है। अणु सबसे छोटा माप है और दण्ड सबसे बड़ा, चार हस्त का एक दण्ड होता है। उपर्युक्त तीन प्रकार के नाट्यमण्डपों में भी ज्येष्ठ, मध्य तथा कनिष्ट आदि भेदों के आधार पर नौ अथवा अठ्ठारह भेदों की परिकल्पना की गई हैं। ये अठ्ठारह भेद हस्त और दण्ड को भिन्न मापदण्ड मान लेने पर होते है अन्यथा 'हाथभर का दण्ड' ऐसी कल्पना कर लेने पर नौ प्रकार के ही नाट्यमण्डप होते थें। भरत ने उनमे से केवल तीन ही प्रकार के नाट्यमण्डपों का विवरण प्रस्तुत किया है।[7]

भरत ने विभिन्न आकार–प्रकार के जो तीन मण्डपो का विवरण प्रस्तुत किया है वो तीनों मध्यम श्रेणी के हैं। ज्येष्ठ मण्डप देवी के लिए उपयोगी तथा मध्य मण्डप मनुष्यों के लिए होता है। ज्येष्ठ

नाट्यमण्डप विशाल होने के कारण पात्र द्वारा उच्चरित पाठ्यांश पात्रो के लिए श्राव्य नही होता था तथा ना ही उसकी भावपूर्ण मुद्राएँ दृश्य तथा अनुभवगम्य ही हो पाती थी। अतः विप्रकृष्ट का मध्यम प्रकार का प्रतिपादन किया गया। विप्रकृष्ट (64×32) के मध्यम से बड़ा ही होगा और भरत ने इससे बड़े नाट्यमण्डप की रचना का निषेद किया है। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि भरत प्रतिपादित तीनों प्रकार के नाट्य मण्डपों का क्षेत्रफल आयताकार मध्यम नाट्यमण्डप से छोटा होगा। बड़े मण्डप में पाठ्य के स्वर उच्चरित होने पर वे भीतर गूँजेंगे और अत्यधिक विस्वर हो जाएँगे। साथ ही मुख के विभिन्न दृष्टियों से समन्वित भाव भी नाट्यगृह की दीर्घता के कारण अत्यंत अस्पष्ट दिखाई देंगे। इसलिए सारे प्रेक्षागृहों में मध्यम सबसे उपयुक्त माना गया है। उसमें पाठ्य (संवाद) और गेय (संगीत) अपेक्षाकृत अधिक श्रव्य होता है।[8]

1. विप्रकृष्ट मध्य नाट्य मण्डप

"भूमेविभागं पूर्व तु परीक्षेत प्रयोजक :।
ततो वास्तु प्रमाणेन प्रारभेत शुभेच्छया।।"[9]

भरतमुनि के अनुसार प्रयोजक (नाट्यकर्ता) को सबसे पहले भूमिखण्ड की परीक्षा करनी चाहिए। तदनन्तर वास्तुशास्त्र के प्रमाण के अनुसार शुभ की इच्छा से वास्तु का निर्माण कार्य प्रारम्भ करे।

प्रयोजक (नाट्य प्रयोग करने वाला या नाट्यमण्डप बनवाने वाले मण्डप बनवाने के पुर्व) सबसे पहले भूमिखण्ड की परीक्षा करें, फिर शुभ इच्छा के साथ वास्तुशास्त्र के प्रमाण के अनुसार प्रारंभ करे। जो भूमि समतल, स्थिर, कठोर, काली या सफेद मिट्टी वाली हो उसी पर नाट्मण्डप बनाना चाहिए। सबसे पहले उस भूमि को साफ करवा के उसे हल से जुतवा दे और हड्डियाँ कीलें, कपाल, तिनके और झाड़ियों को निकलवा दें। इस प्रकार भूमि की सफाई करके उस पर चिन्ह बनाई जाएँ। यह कार्य पुष्य नक्षत्र में सफाई सुत्र से होगा। यह सुत्र कपास ऊन, मुँज या किसी वृक्ष की छाल से बनाया जाना चाहिए।

पहले लम्बाई में चौसठ हाथ नापले, फिर उन्हें दो भागों में बाँटे। जो पिछला भाग है उसके भी दो भाग करके आधे में रंगशीर्ष और उसके पिछले भाग में नेपथ्यगृह की रचना होगी। चौसठ हाथ की चौड़ाई वाले भाग को जब दो भागों में बाटेगें तो वह 32×32 हाथ के दो वर्गाकार भूखण्डों में बँट जाती है। अग्रभाग के प्रेक्षकोपवेशन तथा दुसरे भाग को क्रमशः रंगपीठ, नेपथ्य गृह कहते है, जिसका स्थान नियत रहता है। आधे भाग में रंगपीठ एवं मत्तवारिणी भी होती है। रंगपीठ ही मुख्य रंगभूमि है जिसके दोनों ओर 8×8 हाथ का मत्तवारिणी होती है, रंगपीठ तो 16×8 हाथ के व्यास में फैली होती है। इस प्रकार विधिवत् बताए गए क्रम से उस भूमि को इन भागों में बाँट कर नींव उठाने का काम प्रारंभ किया जाए। रंगपीठ के दोनों पार्श्वों में रंगपीठ के नाप के अनुसार चार स्तंभो से युक्त डेढ़ हाथ की ऊँचाई वाली दो मत्तवारणिया बनाई जाएँ। रंगमण्डप या प्रेक्षागार के भूमितल की ऊँचाई उन दोनों मत्तवारणियों के अनुसार रखी जाए। फिर विधिपूर्वक रंगपीठ बनाया जाए और रंगशीर्ष को षड्दारूक से सुसज्जित किया जाए।

सम्पूर्ण रंगशाला के दोनों भागों में से प्रेक्षकोपवेशन जहाँ दर्शकों के बैठने का स्थान है वहाँ पर चार स्तम्भों कि स्थापना की जाती थी। कहा जाता है कि आचार्य भरत ने नाट्यमण्डपों को बनाने का निर्देश देते हुए कहा है कि विकृष्ट मण्डप देवताओं के लिए, चतुरश्र उच्चवर्ग के लिए तथा ष्यश्र प्रेक्षागृह सभी वर्गो के लोगों के लिए बनाया जाता था। नाट्यशास्त्र के चार प्रमुख स्तम्भों का उल्लेख वर्ण–क्रम

के आधार पर किया गया जो वस्तुतः वर्ण व्यवस्था का ही द्योतक है वे चार स्तम्भ है:–

1. **ब्राह्मण स्तम्भ** :– वर्णों में सवप्रथम ब्राह्मण का स्थान आता है। नाट्यमण्डप में श्वेत स्तम्भ के सामने ब्राम्हर्णों के बैठने का स्थान होता है।
2. **क्षत्रिय स्तम्भः**– नाट्यशास्त्र में ब्राम्हण स्तम्भ के पश्चात् क्षत्रिय स्तम्भ का उल्लेख उसी प्रकार है जैसा ब्राम्हण वर्ण के बाद क्षत्रिय वर्ण का वर्णन ऋग्वेद के पुरूष सुक्त में है। यहाँ भी क्षत्रिय स्तम्भ के लिए लालरंग का उल्लेख है। क्षत्रिय स्तम्भ में वस्त्र, माला, अनुलेप आदि लालरंग के होने चाहिए तथा इस अवसर पर ब्राहमणों को गुड़ –भात खिलाने की बात का भी उल्लेख है।
3. **वैश्य स्तम्भः**– वर्ण परिचय में वैश्य स्तम्भ का रंग पीला बताया है, तथा इस अवसर पर ब्राहमणों को घी व चावल देने का विधान आचार्य भरत ने बताया है।
4. **शूद्र स्तम्भः**– उत्तर– पूर्व दिशा में शूद्र का रंग नीला काला बताया गया है। तथा ब्राहमणों को खिचड़ी खिलानी चाहिए था।

मत्तवारणीः– मत्तवारणी के संबंध में भरत ने यह परिकल्पना की है कि वह रंगपीठ के पार्श्व में हो, उसी के प्रमाण के अनुरूप उनमें चार स्तम्भ हो, वह डेढ़ हाथ ऊँची हो तथा दोनों मत्तवारणी के तुल्य रंगमण्डप होना चाहिए।–

रंगशीर्ष और नेपथ्यगृह के बीच की दीवार में दो द्वार बनाने चाहिए। इस रंगशीर्ष का भराई प्रयत्नपूर्वक काली मिट्टी से करनी चाहिए। मिट्टी को सफेद रंग के बैल का इस्तेमाल करके भूमि को हल जोतकर साफ कर लेना चाहिए। इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक रंगपीठ बनाना चाहिए। इसके फर्श न तो कुर्मपृष्ठ आसपास नीचा बीच में ऊचा और न बीचमे नीचे झुका व लम्बा होना चाहिए, रंगशीर्ष समतल होना चाहिए। रंगशीर्ष बन जाने के बाद लकड़ी का काम करना चाहिए। इसमें विभिन्न प्रकार की सजावनो से युक्त तथा व्याल से सुसोभित होता है। विभिन्न प्रकार की रचनाएँ खिड़कियाँ, सुन्दर झरोखे से सजाना चाहिए। नाट्य मण्डप पर्वत की गुफा के आकार की द्विभुमि होना चाहिए। झरोखे और– और खिड़कियों से हवा धीमी ही आए, तेज हवा न आसके तथा आवाज गंभीर रूप से सुनाई दे सके, ऐसी व्यवस्था नाट्यमण्डप में होनी चाहिए।

चतुरस्र नाट्यमण्डपः–

यह नाट्यमण्डप वर्गाकार 32×32 हाथ का होता हैं। इसकी लम्बाई तथा चौड़ाई समान होती है। इस वर्गाकार भूमि का विभाजन सूत्र के द्वारा होता है। इसके पश्चात् इस वर्गाकार चतुरश्र नाट्य मण्डप में चौबीस स्तम्भों की रचना होती है, जो नेपथ्य गृह से प्रेक्षक गृह तक निश्चित दूरी पर रहते है। इन स्तम्भों पर कमल के पुष्प अंकित होते है तथा वे इतने दृढ़ होते है कि ऊपर की छत को धारण कर सकें। इस चतुरश्र नाट्यमण्डप के मध्य आठ हाथ वर्गाकार भूमि का रंगपीठ होता है और 12×8 हाथ आयताकार, भूमि में चार स्तम्भों वाली मत्तवारणी सुशोभित रहती है। चतुरश्र का नेपथ्य गृह 8×32 हाथ में का होता है और प्रेक्ष को पवेशन 12×32 हाथ में होता है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में रंगपीठ को छोड़कर नाट्य मण्डप के किसी अन्य का माप नहीं दिया है परन्तु रंग पीठ तथा विप्रकृष्ट (मध्य) नाट्य मण्डप के विवरण के आधार पर अन्य की परिकल्पना की जाती है। विप्रकृष्ट नाट्यमण्डप में जो विधि लक्षण और मांगलिक विधान बताए गए है, वे सब चतुरश्र में भी कराई जाती है। चारों ओर से अच्छी तरह ईंट और लकड़ी से सिढ़ियों के आकार की आसन पक्तियाँ बनानी चाहिए। पकी हुई ईंटो से भित्ति रचना होती है।

त्र्यस्र नाट्यमण्डपः–

त्र्यश्र नाट्य मण्डप त्रिकोण होता है। चतुरश्र नाट्य मण्डप के अनुसार ही इसकी भित्ति एवं स्तम्भ रचना होती है। इसका रंगपीठ मध्य से होता है। इस नाट्य मण्डप के दो द्वार तो रंगपीठ के पृष्ठ भाग में होते है, जिससे नेपथ्यगृह से पात्र प्रवेश कर सके और एक द्वार विप्रकृष्ट और चतुरश्र नाट्यमण्डप की तरह रंगपीठ के सम्मुख प्रेक्षक गृह से सामाजिक जन के प्रवेश के लिए होता है। नेपथ्य और रंगशीर्ष भी त्रिकोण ही होते है। त्र्यश्र नाट्य मण्डप का माप भरत ने नही बताया। अभिनव गुप्त ने अनुमानतः विप्रकृष्ट के मध्यम नाट्य मण्डप के समान 64 हाथ की सभी भुजाओं को बताया तथा चतुरश्र नाट्यमण्डप के समान 32 हाथ का हो सकता है। दीवार और स्तम्भ के विषय में चतुरश्र के समान ही उन सारी विधियों को अपनाया जाता है।

नाट्य मण्डप के कुछ अन्य अंग :–

नाट्य मण्डप के मुख्य भाग रंगपीठ और रंगशीर्ष के रचना–विधान के उपरान्त भरत ने नाट्य मण्डप से संबन्धित अन्य अंगोपांगों की रचना का भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इन विधियों में भित्ति–कर्म, दारू–कर्म, स्मम्भ रचना द्वाररचना और प्रेक्षकों की आसन प्रणाली मुख्य है।

1) निवेशनः– नीव देने को निवेशन कहते है। यह कार्य बहुत धूम–धाम से उत्सव की रूप में मनाया जाता है जिस समय नींव रखी जाती है शंख ध्वनी, दुन्दुभी इत्यादि वाद्य यंत्रों को बजाया जाता है। उस समय एक भोज का आयोजन किया जाता है जिसमें राजा को मधुपर्क एवं कार्यकर्ताओं को गुड़–भात दिया जाता हैं। ब्राम्हणों को घी और खीर खिलाना चाहिए।

2) भित्तिकर्म और स्तम्भरोपण :– नीव की स्थापना के बाद दीवारों के उठाने का कार्य होता है तथा दीवारों के उठ जाने के पश्चात् स्तम्भरोपण का कार्य भी धूम– धाम से करना चाहिए। ये स्तम्भ अर्थात् खम्भे उन जगहों पर रखे जाते है जहाँ प्रेक्षक गण बैठते है प्रेक्षागृह के चारों तरफ दीवारें होती है। छप्पर को रोकने के लिए बीच में खम्भे रहते हैं। विविध पूजन द्रव्यों से इन स्तम्भो की पूजा कर फूलमालाओं से इन्हें सजाना चाहिए, इनकी स्तम्भों के मूल में स्वर्ण,रजत, ताम्र एवं लौह आदि धातुओं को रखने का विधान है। स्तम्भारोपण के बाद नाट्यचार्य को मन्त्र दक्षिणा देकर, सबको यथाविधि भोजन कराना चाहिए।–

3) मत्तवारणी :– स्तम्भारोपण के बाद नाट्यशास्त्र में मत्तवारणी का विधान आता है। रंगपीठ के पास मत्तवारिणी की रचना होनी चाहिए–

"रंगपीठस्य पार्श्वे तु कर्तव्या मत्तवारणी"।

चतुःस्तम्भसमायुक्ता रंगपीठप्रमाणतः।।[13]

यह मत्तवारणी सम्भवतः बारभदे के आकार की होती थी जो रंगपीठ या रंग मंच के दोनों ओर बनाई जाती थी। रंगपीठ के बराबर ही चार खम्भों से युक्त मत्तवारणी होती थी, जिसकी कुर्सी की ऊँचाई धरातल से डेढ़ हाथ ऊपर होती थी। रंगपीठ के कर्सी की ऊँचाई भी इतनी ही कही गई हैं। दोनों ओर की मत्तवारणी की ऊँचाई के समान ही रंगशीर्ष की ऊँचाई होनी चाहिए।

4) रंगपीठ :–

यह मुख्य रंगभूमि होता है।नाट्यशास्त्र में रंगपीठ संज्ञा का वर्णन आया है जिसे हम "स्टेज" के नाम से वर्तमान में सम्बोधित करते हैं। हिन्दी में इसे रंगमंच कह गया है रंगपीठ की रचना विधिवत् छः लकड़ियों का प्रयोग करके होने की बात भरत ने कही है। रंगपीठ ऊँचा होता है इसलिए इसे

नाट्यमण्डप का शीर्ष कहा जाता है। इससे होकर ही नेपथ्य गृह में जाने के दो द्वार होते है जहाँ से कलाकार अन्दर एवं बाहर जाते हैं। यह रंगपीठ समतल दर्पण के सतह के समान होता हैं। कूर्म–पृष्ठ और मत्स्यपृष्ठ आकार के रंगपीठ भी बनते थे, जो यह समझकर बनाए जाते थे कि मध्य भाग या पीछे का भाग क्रमशः ऊँचा रहेगा, तो दर्शकों को दृश्य स्पष्ट दिखाई देंगे। परन्तु उनका प्रयोग अवैज्ञानिक और असुविधाजनक ही निकले। अतः यहाँ उनका निषेध कर आदर्श तलाकार बनाने का ही विधान किया गया है।

5) रंगशीर्ष :– रंगपीठ और नेपथ्यगृह के मध्य का भाग रंगशीर्ष कहलाता है इसका व्यास 8×32 हाथ या 8×8 का भी हो सकता है इसके 8×8 हाथ के व्यास में बनी वेदिका पर रंगपूजा होती है। रंगपीठ के पृष्ठ का यह भाग मानव के शीर्षाकार में उठा होता है अतः इसे "रंगशीर्ष कहते हैं।

6) दारूकर्म:– नाट्यमण्डप की रचना में लकड़ी की कारीगरी (काष्ठशिल्प)को दारूकर्म कहा गया हैं। इसमें सभी खम्भे, दरवाजे, खिड़कियाँ, समस्त नाट्यमण्डप विशेषकर रंगपीठ,रंगशीर्ष के चारो ओर शिल्प कला से मनोहर छवियों को विभूषित की जानी चाहिए। स्थान–स्थान पर चौक बने हों, हाथियों, सर्पो की आकृति बनी होती है। काष्ठ की कठपुतलीयों से नाट्यगृह को अलंकृत करते है। बैठने के सिंहासन आदि एवं ऊपर की कड़ीयों तथा स्तम्भ सभी में लताओं, कबूतरों की जोड़ी एवं विविध प्रकार की कलाकृतियाँ बनाई जाती थीं।

6) मंडप :– नाट्यशास्त्र के अनुसार नाट्यमंडप द्विभूमि बनाया जाना चाहिए। रंगपीठ का धरातल प्रेक्षको के बैठने के धरातल से अवश्य ही ऊँचा होना चाहिए जिससे प्रत्येक दृश्य स्पष्ट रूप से दिखाई दे। नाट्यमंडप में छोटे–छोटे वातायान होने चाहिए जिससे वायु का प्रवेश कम हो एवं शब्द गम्भीर रूप धारण कर सुनाई दे और वाद्य संगीत आदि सुक्ष्म क्रियाकलापो को आसनी से श्रवण कर सकें।

7) चित्रकर्म :– दीवारों की रचना और उसकी अच्छी तरह से लिपाई–पुताई हो जाने पर उन्हें पोछ कर उनपर विविध चित्र बनाए जाए। अधिकतर पुरूषों और स्त्रियों के श्रृंगारपूर्ण एवं नदियों आदि के सुन्दर दृष्य आंकित हो। लताबद्ध एवं श्रृंगार रस से सम्बन्धित भी चित्रांकन होना चाहिए। मध्य विप्रकृष्ट नाट्य मण्डप का यही स्वरूप हैं

भरत के अनुसार नाट्यमण्डपों स्वरुप इस प्रकार है।[13]

भरतकृत नाट्यशास्त्र में मंच एवं प्रेक्षागृह के जिस निर्माण विधी को बताया गया है, आधुनिक विद्वानों ने भी भरत केउसी विधि के अनुसार नाट्य मण्डप के विभिन्न रूपो को दर्शाया हैं।नाट्यशास्त्र में मंच प्रदर्शन के आवश्यक अंग प्रस्तुतकर्ता, दर्शक, श्रोता तथा मंच ही है। नाट्य या नाटक के अतंर्गत ही संगीत का समावेष नाट्यशास्त्र में माना गया है। गायन, वादन, नृत्य तीनो विधा नाट्यशास्त्र में स्वतंत्र रूप से कही भी इसका उल्लेख प्राप्त नही होता है। सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में मंच का निर्माण स्थान चयन, आकार, प्रकार तथा प्रेक्षागृह के निर्माण आदि का विवरण मिलता है। भरत की दृष्टि में नाट्य प्रयोग की सिद्धि के लिए गीत–वाद्य का महत्व है।

नाट्यशास्त्र के पूर्व भी संगीत एवं अन्य प्रत्यक्ष कलाओं का प्रदर्शन होता रहा है। यद्यपि इन प्रदर्शनों का यत्र–तत्र उल्लेख मिलता है परन्तु विस्तृत व प्रमाणित वर्णन प्राप्त नही होता वैदिक काल में मंत्र के साथ विणा वादन तथा सामगान होता था। इसके पश्चात् मनोरंजन के लिए गाथाएँ गायी जाती थी। उस समय मंच के निर्माण का विकास नाट्यशास्त्र के समय जैसा नही रहा होगा पर एक ऊँचे समतल स्थान की कल्पना की जा सकती है। रामायण महाभारत में नाट्यशाला, नृत्यशाला तथा संगीत के प्रदर्शन हेतु सभागार को होते थे। जिसमें मंच को हुआ करता था। राज्य सभाओं में दूर प्रदेशो से विद्वान कवि, एवं संगीतकार आते थे जिनकी कला का प्रदर्शन नाट्यशाला में संपन्न होता था। इसप्रकार कहा जा सकता है कि भरत के नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डप का जो विधान बताया गया है उसको बनाने में आचार्य भरत ने दर्शक एवं कलाकार दोनों की सुविधा का ध्यान रखा था।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, भरत और भारतीय नाट्यकला, प्रथम संस्करण 1960 राजकमल प्रकाशन, फैज़ बाजार, दिल्ली, पृ0सं0–85
2. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992 संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वारणसी, अध्याय– 1,पृ0सं–123,श्लोक सं0118,
3. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992 संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वारणसी, अध्याय –2,पृ0सं–146,श्लोक सं0–6
4. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992 संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, अध्याय– 2,पृ0सं–146,श्लोक सं0 –7
5. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992 संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, अध्याय –2,पृ0सं–147,श्लोक सं0–8
6. त्रिपाठी, राधा बल्लभ, संक्षिप्त नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0सं0–23
7. दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, भरत और भारतीय नाट्यकला, प्रथम संस्करण 1960 राजकमल प्रकाशन, फैज़ बाजार, दिल्ली, पृ0सं0–86
8. दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, भरत और भारतीय नाट्यकला, प्रथम संस्करण 1960 राजकमल प्रकाशन, फैज़ बाजार, दिल्ली, पृ0सं0–86
9. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992 संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, अध्याय– 2,पृ0सं–161,श्लोक सं0–29
10. वही,पृष्ठ सं0–177,श्लोक सं0–56

11. दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, भरत और भारतीय नाट्यकला, प्रथम संस्करण 1960 राजकमल प्रकाशन, फैज़ बाजार, दिल्ली, पृ0सं0–92

12. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम्, प्रथम संस्करण 1992 संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, अध्याय– 2,पृ0सं–181,श्लोक सं0–70

13 नाट्यमण्डप चित्र– दीक्षित, सुरेन्द्रनाथ, भरत और भारतीय नाट्यकला, प्रथम संस्करण 1960 राजकमल प्रकाशन, फैज़ बाजार, दिल्ली, पृ0सं0–97

14. तिवारी, हरीश कुमार, मंच प्रदर्शन में कलाकार एवं श्रोता, प्रथम संस्करण– 2005 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली